आत्म-वेदना

रचयिता

पं० पद्मकान्त जी मालवीय
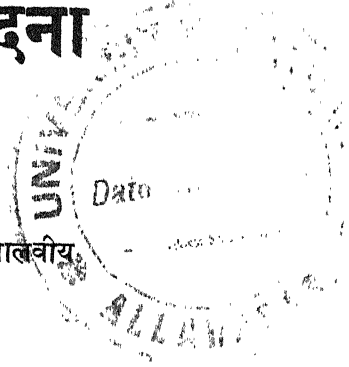
आत्म-वेदना अग्निकुंड में अपनापन जल हो निःशेष
मेरे हो जाओ या मुझको अपनालो मेरे हृदयेश

प्रकाशक

अभ्युदय-पुस्तक-भंडार, प्रयाग

प्रथम संस्करण १०००

दीपावली १९३३

मूल्य १ रुपया

निवेदन

'प्रेमपत्र' की रचना के कारणों ने मेरे जीवन में एक क्रान्ति कर दी है। आत्म-वेदना उसी क्रान्ति का पहला उफ़ान है; बढ़ते बढ़ते जब व्यथा असह्य हो जाती है तब आत्म-विस्मृति के दान से जीवन शक्ति व्यक्ति की रक्षा करती है। अन्त में आत्मज्ञान के उदय से पीड़ा की दारुणता का अन्त और शान्ति की प्राप्ति होती है। मैं कह नहीं सकता कि आत्म-वेदना की ज्वाला में जल कर मैं पवित्र हुआ या नहीं, अधिक श्रेष्ठ और ऊँचा उठा या नहीं; किन्तु इतना अवश्य है कि मेरी भावनायें गहरी और आवेग-पूर्ण अब अधिक हो गयी हैं। समाज की दृष्टि में श्रेष्ठ मनुष्य होना असम्भव है, कम से कम मेरे लिये। उसमें बनना पड़ता है। उसके लिये प्रयत्न करना होता है। न मैं प्रयत्न ही कर सकता था, न बन ही सकता था। गहराई आती है खुशी से या नाखुशी से; जीवन में कम से कम एक-दो बार अवश्य ही। गहराई कितने दिन तक रहती है, कितनी जल्दी वह भर जाती है, यह प्रत्येक मनुष्य के अपनेपन पर निर्भर रहता है। मुझ में अपनेपन की कमी नहीं। कुछ लोगों की राय में इसी अपनेपन के कारण मैं समाज का कृपापात्र न बन सका किन्तु मैं समझता हूँ कि समाज मेरे अपनेपन का एक अंग है; मेरा अपनापन समाज का नहीं।

दुःख में आत्मा अन्तर्हित होती है। मेरी इन पंक्तियों में उनके प्रत्येक शब्द में मेरी आत्मा है, मेरा अपनापन है। लोग कहते हैं कि मुझ में कल्पना की कमी है। ठीक है, कल्पना की

कमी मुझ में है क्योंकि कल्पना के साथ मैंने आत्मा को नहीं उड़ने दिया। कल्पना को अपनी आत्मा के अन्दर ही रहने दिया और उसी में न केवल सृष्टि वरन् सृष्टि के निर्माता, पालक और विध्वंसकर्ता सब को एक साथ, एक ही रूप में, मैंने पाया।

आत्म-वेदना से घबड़ा कर एक स्थल पर मैंने लिखा है :—

"जीवन ही मेरे जीवन का
सबसे अधिक दुखद दुख है।"

किन्तु अब मैं ऐसा नहीं समझता। अवश्य ही कुछ दिनों पहले मैं सोचा करता था कि जीवन में मेरे लिये अब कुछ नहीं रह गया। संसार मेरे लिये व्यर्थ है किन्तु अब यह बात नहीं। अब मैं समझता हूँ कि संसार में अभी बहुत सी ऐसी वस्तुयें शेष हैं जो मेरे जीवन को जीता-जागता बनाये रख सकती हैं। शशि की शीतल चाँदनी, प्रशस्त नीरव नील गगन के तारे, ऊँचे नीचे हो कर कलकल करती, बहती हुई नदी, और—सब से अधिक—मेरी आत्मा मेरे जीवन को ओजपूर्ण और गति-शील बनाये रखने के लिये बहुत काफ़ी है। अब संसार मुझे दूसरे ही प्रकार का नज़र आता है। इसी लिये मैंने लिखा है—

"शोभा की प्रतिमा है दुनिया, मैं—हूँ चारु चितेरा।
ऋतुपति रंजित जिसमें सुन्दर, संध्या और सवेरा॥"

जीवन रुदन का पर्यायवाची शब्द है। 'अपने जीवन के जिस क्षण में मनुष्य रोया नहीं उसे समझना चाहिये कि उस क्षण उसके पशुत्व ने उसके नरत्व पर विजय पा ली है।' मनुष्य के जीवन का आनन्द रुदन की प्रतिमूर्ति-मात्र है।

उसी रुदन और उसी की प्रतिमूर्ति, आनन्द, का आपको इन पंक्तियों में पग-पग पर अनुभव होगा। काल ने प्रिय वियोग की

मिजराब मार कर मेरी हृतंत्री में वह अनन्त स्वर-लहरी पैदा कर दी है, जो उसी तक परिमित न रह कर अन्य हृतंत्रियों में भी प्रतिध्वनित हो रही है और होती रहेगी। बाँटने से, सुख बढ़ता, और दुख घटता, है। परमात्मा करे, ऐसा ही हो।

३० जार्जटाउन
प्रयाग
१० सेप्टेम्बर ३३

अपने आलोचकों से

जिस दिन से 'त्रिवेणी' नामक मेरी रचनाओं का पहला संग्रह प्रकाशित हुआ उसी दिन से मैं हिन्दी के समालोचक महानुभावों की कृपा का शिकार रहा हूँ। तरह तरह की बातें सुनने में आती हैं। इच्छा थी कि 'प्याला' नामक द्वितीय संग्रह में मैं अपनी स्थिति साफ़ करता, किन्तु कई कारणों से मैं ऐसा कर न सका। किन्तु, अब मैं अपने संबन्ध में हिन्दी के विद्वानों के सम्मुख कुछ निवेदन करने जा रहा हूँ; इसलिये नहीं कि मैंने जो कुछ किया उसमें मुझे कहीं से कोई कमज़ोरी नज़र आ रही है, बल्कि इसलिये कि दिनों दिन मेरा अपने में विश्वास बढ़ता जा रहा है; और मैं चाहता हूँ कि लोग निष्पक्ष होकर मेरी बातों पर विचार करें।

मेरी रचना के सम्बन्ध में लोगों को दो शिकायतें विशेष रूप से हैं:—पहली यह कि उसमें वासना (passion) की अधिकता है और दूसरी यह कि उस की भाषा काव्य की भाषा नहीं। प्रथम आक्षेप के सम्बन्ध में इशारा करते हुए मेरे एक आदरास्पद मित्र ने मुझे लिखा था "मैं यह देखता रहता हूँ कि इस चीज़ से हमारे देश और समाज को क्या लाभ होगा, उन के किस अभाव की पूर्ति होगी। देश की कमज़ोरियों को मिटाने और बल-पौरुष को बढ़ाने में यह कहाँ तक सहायक होगी? जो चीज़ इस कसौटी पर 'पास' हो जाती है उसका मैं प्रचारक हो जाता हूँ। जो मुझे इसके विपरीत जँचती है, उसका मैं एक तरह से विरोधी हो जाता हूँ। आप की पुस्तक में काव्य-कला हो सकती है परन्तु

जीवन को बलिष्ठ और तेजस्वी बनाने वाले तत्व कितने हैं ?"

मुझे खेद है कि मैं अपने श्रद्धेय मित्र से सहमत नहीं हो सका। मेरी बुद्धि में कला और जीवन परस्पर विरोधी शब्द नहीं। वे एक दूसरे के प्रतिपूरक हैं। वास्तविक कला जीवन का एक अंग है; और वह उसे ऊँचे ही उठाती है, नीचे नहीं गिराती। किन्तु कला की कसौटी जीवन को बलिष्ठ और तेजस्वी बनाना नहीं है, उस की कसौटी तो एक है और वह है उसका रचनात्मक (Creative) अथवा ध्वंसात्मक (Destructive) होना। रचना की सब से अधिक और मूल्यवान पहचान आनन्दप्रदता है। जिससे कारण चित्त को आनन्द मिले, उसी में रचनात्मक शक्ति मौजूद है और जिसमें रचनात्मक शक्ति है वही कला है। आनन्द जीवन के लिये स्फूर्तिदायक है और स्फूर्ति का नाम ही जीवन है।

पर आनन्द है क्या? आनन्द एक ऐसी वस्तु से भी हो सकता है, जो न सत्य और न शिव हो। हमारा उत्तर इस सम्बन्ध में इतना ही है कि संसार में कोई भी वस्तु एक दम से असत्य और अशिव नहीं और न सभी सत्य और शिव हैं। यह अपने अपने दृष्टि-कोण का भेद है। जो चीज़ हमारे लिये सत्य और शिव है वही दूसरे के लिये असत्य और अशिव हो जाती है।

कला का सम्बन्ध मस्तिष्क से नहीं, हृदय से है; विचारों से नहीं, भावनाओं से है। हम यह नहीं कहते कि मस्तिष्क और हृदय में, विचारों और भावनाओं में, सम्बन्ध नहीं, किन्तु इतना हम अवश्य कहेंगे कि कला का सीधा सम्बन्ध हृदय और भावनाओं से है, मस्तिष्क और विचारों से नहीं। कला में हृदय और भावना ही प्रधान हैं। विचार उसमें रहते ज़रूर हैं क्योंकि विचार और भावनायें एक दूसरे से अलग नहीं की जा सकतीं; किन्तु कला

में विचार विचारों के लिये नहीं होते। विचारों के लिये विचार का नाम विज्ञान है और विचारों के लिये भावना और भावनाओं के लिये भावना का नाम है काव्य कला।

काव्य के विषय के लिये संसार में कोई भी वस्तु बुरी नहीं। विषय ख़राब से ख़राब, मामूली और छोटा हो सकता है। कविता में हमें तो केवल यह देखना चाहिये कि कवि ने किसी ऐसे सौन्दर्य का अनुभव किया या कराया है या नहीं जिसे मौजूद रहते हुए भी हम ने पहले साधारण रूप से अनुभव नहीं किया। यदि काव्य में यह गुण मौजूद है तो उसे पढ़ कर हमारा चित्त अवश्य प्रसन्न होगा जो कला का एक विशेष गुण है।

किसी चित्र में चित्र का विषय नहीं, चित्र किस तरह खींचा गया है यही देखा जाता है और देखा जाना चाहिये। मैं जानता हूँ कि कितनी ही बातें प्रसन्नता का विषय होती हुई भी ऐसी नहीं होतीं जो समाज के सामने खोल कर रख दी जायँ किन्तु यह भी मानना ही पड़ेगा कि कवि राजनीतिज्ञ या समाज सुधारक नहीं होता यद्यपि इन दोनों ही को उसकी आवश्यकता होती है।

हम बुराइयों और कमज़ोरियों से कितना ही क्यों न चिढ़ें किन्तु इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि इन्हीं के कारण मनुष्य मनुष्य कहलाता है और प्रायः वास्तविक जीवन ही में बुराइयों के वृक्ष उगा फूला और फला करते हैं। कवि बुरी से बुरी भावना पर भी प्रकाश डालने के लिये स्वतन्त्र है, क्योंकि कवि वास्तविकता की खोज में रहता है और बिना वास्तविकता के कविता कविता के नाम से नहीं पुकारी जा सकती। हमारी बुद्धि में कविता का सरल, वासनाजन्य और उद्वेग पूर्ण (Simple, Sensuous & passionate) होना आवश्यक है।

मनुष्य भावनाओं का पुतला है। प्रेम और घृणा की भावनायें अन्य भावनाओं से अधिक बलवती होती हैं। अलौकिक पुरुषों के अतिरिक्त साधारण मनुष्य इन दोनों भावनाओं से प्रेरित हो कर ही संसार में जीवन यापन करते हैं। प्रेम और वासना विभिन्न वस्तुयें नहीं हैं। वासना-रहित प्रेम की बात मिथ्या, असाध्य और तपस्वियों और योगियों के स्वप्न की बात है। साथ ही कोरी वासना अत्यासक्ति की परिचायक है और वह मनुष्य को रौरव की ओर ढकेलती है। प्रेम में वासना सन्निहित है। प्रेम-सम्बन्धी कविताओं में इसलिये वासना का आभास पाठकों को मिलता है। यह स्वाभाविक भी है। यदि हम प्रेम की भावना को घृणा की दृष्टि से नहीं देखते तो कोई कारण नहीं कि हम वासना को नीच और हेय दृष्टि से देखें। वासना और उसके व्यक्तीकरण (Expression) ही में वास्तविक सौन्दर्य है।

दूसरा आक्षेप भाषा-संबन्धी है। इस संबन्ध में मेरा कहना फिर भी यही है कि लिखने और बोलने की भाषा में अत्यधिक भेद उसकी उन्नति के मार्ग में बाधक है। हिन्दी में मिठास लाने के नाम पर संस्कृत शब्दों की भरमार अत्यन्त अनुचित तथा गर्हित कार्य है।

काव्य की भाषा

सुन्दरता ही वस्तुओं की जान है, फिर वह चाहे सोने की सुन्दरता हो या मिट्टी की, खिलती हुई उषा की या घनीभूत भयंकर तूफ़ान की, शिव की या प्रलयंकर की। पुष्प भी अपनी सुन्दरता रखते हैं और महान् पाप भी। जो वस्तु भी अन्तरात्मा में निहित प्रकृति के अनुसार पूर्णतया व्यक्त है—विकसित है—

जो वस्तु भी अकृत्रिम हैं, तथा श्रेष्ठरूप से अनन्त के संकेतों से पूर्ण है वही सुन्दर है। विकास तथा विशालता से और कृत्रिमता से कोई सम्बन्ध नहीं, इसीलिए कृत्रिमता तथा वास्तविक सुन्दरता भी परस्पर विरोधी हैं। कृत्रिमता से थोड़ी देर के लिए आँख, कान अथवा अन्य ज्ञानेन्द्रियाँ (निम्न शारीरिक या पार्थिव के भाव में) मोहित हो सकती हैं किन्तु आत्मा नहीं। आत्मा में तो वही वस्तु प्रवेश कर सकती है जो आत्मा ही के समान सरल, सुन्दर, तथा गम्भीर हो।

कला आत्मा का व्यक्त रूप है, और कला ही द्वारा कलाकार की आत्मा, (अथवा विश्व की आत्मा—सीमित में छिपी हुयी असीम की आत्मा) अपने को व्यक्त करती है। मूर्ति में मूर्तकार, चित्र में चित्रकार, काव्य में कवि, तथा संगीत में संगीतज्ञ अपने अपने को मुक्त करते हैं, और इस मुक्ति-प्रयास में, शान्ति, सुख तथा पूर्णता का लाभ करते हैं।

काव्य अमर आत्मा का संगीत है, और यदि इस संगीत को व्यक्त करने की भाषा प्राकृतिक, सरल तथा संगीतमय न हुई तो वह अपने कार्य्य में असफल रहती है। भाषा की प्राकृतिकता ही में प्रवाह, सरलता ही में गम्भीरता रहती है, तथा उसके संगीत ही में आत्मा की कोमल लहरियों का रूप स्पष्ट होता है। बड़े बड़े शब्दों की ध्वनि से पूरित अलंकारों से दबी हुई, "बनाई हुयी" भाषा चाहे कान तथा मस्तिष्क को मोहित कर ले, पर वह आत्मा को नहीं जीत सकती। जो आत्मा की वस्तु नहीं वह आत्मा की कैसे हो सकती है? जो सरल नहीं, सुन्दर नहीं, किन्तु कृत्रिम तथा गुँथी हुई है, जो गम्भीर नहीं किन्तु जटिल है, वह भाषा काव्य की, आत्मा के संगीत की, वास्तविक भाषा नहीं। ऐसी भाषा में न तो आत्मा अपने को शुद्ध तथा पूर्ण रूप से

व्यक्त ही कर सकती है और न ऐसी भाषा आत्मा पर कुछ असर ही डाल सकती है।

संसार के किसी भी महान कवि की अमर पंक्तियाँ यदि हम पढ़ें तो हम देखेंगे कि चाहे और स्थलों पर उसने किसी भी तरह क्यों न लिखा हो किन्तु अमर पंक्तियों में उसकी भाषा उसकी और स्थलों की भाषा से अवश्य ही अधिक सरल, अधिक सीधी-सादी, तथा अधिक मधुर और परिचित (Familiar) हो गयी है। जो कवि जितना ही अधिक महान, उन्नत, अनुभवी, तथा सूक्ष्म-दर्शी होता है उसकी भाषा उतनी ही अधिक सुबोध, परिमार्जित, तथा [illegible] होती है। [illegible] तथा गहरे भाव, अनुभव की अग्नि में तप कर विशुद्ध हुए महान विचार, जटिल तथा अति-अलंकृत भाषा को सहन ही नहीं कर सकते—या तो वे स्वयं मर जाते हैं या इनको मार डालते हैं। आह की सीधी-सादी पंक्तियाँ या आँसुओं से उमड़े हुए शब्द ही उनके काम आते हैं न कि मकड़ी के जालों सी बुनी हुई लच्छेदार किन्तु "रची हुई" कृत्रिम भाषा। पंत जी की निम्न लिखित पंक्तियों में कवि, तथा उसकी कविता के विषय में कितनी सच्ची बातें कही गयी हैं, तथा स्वयं ये पंक्तियाँ उनकी कही हुई बातों की (विशेष कर वास्तविक कविता की वास्तविक भाषा की) कितनी सुन्दर उदाहरण हैं :—

"वियोगी होगा पहिला कवि,
आह से उपजा होगा गान,
उमड़ कर आँखों से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान,"

ये पंत जी की सर्वोत्तम पंक्तियों में से हैं। इन पंक्तियों में और जो गुण हैं वे तो हैं ही, किन्तु इतना और कह देना उचित

है कि जो लोग गर्व के साथ कहते हैं कि "भाई, हम तो पंत जी को समझ ही नहीं सकते" उनको भी यहाँ न समझने का कोई बहाना नहीं मिलता। सूरदास के कूट उनकी जटिल विद्वत्ता के चाहें जितने अच्छे उदाहरण हों किन्तु कवि सूरदास की महानता के नहीं। उनकी महानता तो उनके तीर से सीधी चोट करने वाले पदों की सरल महानता, तथा मधुर गरिमा पर स्थित है।

कवि का विकास ही इस प्रकार होता है। प्रारम्भ में भाषा जटिल, अलंकृत, तथा स्पन्दन हीन सी होती है। बड़े बड़े शब्द रहते हैं किन्तु उन बड़े बड़े शब्दों में भाव छिछले ही रहते हैं। पंक्तियाँ हृदय को सीधे स्पर्श नहीं कर सकतीं। वे सीधी, जानदार, और पुरअसर नहीं होतीं। किन्तु ज्यों ज्यों कवि उन्नति करता है, ज्यों ज्यों उसकी कला तथा स्वयं उसका विकास होता है, ज्यों ज्यों उसकी क़लम मँजती है, भाव गहरे, विचार सारगर्भित होते जाते हैं, त्यों त्यों भाषा पर से मैल हटती जाती है, वह विशुद्ध तथा परिमार्जित होती जाती है; उसमें सरलता, तथा गम्भीरता, मधुरता तथा प्रवाह, जीवन तथा शक्ति आती जाती है, पंक्तियाँ भाव तथा अनुभव की गहराई से स्पन्दित हो उठती हैं; और शब्दों में अर्थ आँखों से खुल उठते हैं तथा उनसे आँखें मिलाते ही हृदय समझ जाता है कि उनमें क्या क्या भरा हुआ है।

"घन घमंड नभ गरजत घोरा,
प्रिया-हीन डरपत मन मोरा।"

पढ़कर पंडित अथवा अपंडित सभी एक साथ झूम उठते हैं। जो असली जादू है वह सब पर असर करता है—बाद को और विचार कर पंडित गण कलात्मक विवेचन कर कर के चाहे और मुग्ध होते रहें, किन्तु असली जादू जो पंक्तियों का है वह

व्यक्त ही कर सकती है और न ऐसी भाषा आत्मा पर कुछ असर ही डाल सकती है।

संसार के किसी भी महान कवि की अमर पंक्तियाँ यदि हम पढ़ें तो हम देखेंगे कि चाहे और स्थलों पर उसने किसी भी तरह क्यों न लिखा हो किन्तु अमर पंक्तियों में उसकी भाषा उसकी और स्थलों की भाषा से अवश्य ही अधिक सरल, अधिक सीधी-सादी, तथा अधिक मधुर और परिचित (Familiar) हो गयी है। जो बात जितनी ही अधिक सहज, उच्च, अनुभूति तथा सूक्ष्म-दर्शी होती है उसकी भाषा [illegible] परिमार्जित, तथा स्वाभाविक होती है। [illegible], अनुभव की अग्नि में तप कर विशुद्ध हुए महान विचार, जटिल तथा अति-अलंकृत भाषा को सहन ही नहीं कर सकते—या तो वे स्वयं मर जाते हैं या इनको मार डालते हैं। आह की सीधी-सादी पंक्तियाँ या आँसुओं से उमड़े हुए शब्द ही उनके काम आते हैं न कि मकड़ी के जाले सी बुनी हुई बारीक किन्तु "रची हुई" कृत्रिम भाषा। पंत जी की निम्न लिखित पंक्तियों में कवि, तथा उसकी कविता के विषय में कितनी सच्ची बातें कही गयी हैं, तथा स्वयं ये पंक्तियाँ उनकी कही हुई बातों की (विशेष कर वास्तविक कविता की वास्तविक भाषा की) कितनी सुन्दर उदाहरण हैं:—

> "वियोगी होगा पहिला कवि,
> आह से उपजा होगा गान,
> उमड़ कर आँखों से चुपचाप,
> वही होगी कविता अनजान,"

ये पंत जी की सर्वोत्तम पंक्तियों में से हैं। इन पंक्तियों में और जो गुण हैं वे तो हैं ही, किन्तु इतना और कह देना उचित

है कि जो लोग गर्व के साथ कहते हैं कि "भाई, हम तो पंत जी को समझ ही नहीं सकते" उनको भी यहाँ न समझने का कोई बहाना नहीं मिलता। सूरदास के कूट उनकी जटिल विद्वत्ता के चाहें जितने अच्छे उदाहरण हों किन्तु कवि सूरदास की महानता के नहीं। उनकी महानता तो उनके तीर से सीधी चोट करने वाले पदों की सरल महानता, तथा मधुर गरिमा पर स्थित है।

कवि का विकास ही इस प्रकार होता है। प्रारम्भ में भाषा जटिल, अलंकृत, तथा स्पन्दन हीन सी होती है। बड़े बड़े शब्द रहते हैं किन्तु उन बड़े बड़े शब्दों में भाव छिछले ही रहते हैं। पंक्तियाँ हृदय को सीधे स्पर्श नहीं कर सकतीं। वे सीधी, जानदार, और पुरअसर नहीं होतीं। किन्तु ज्यों ज्यों कवि उन्नति करता है, ज्यों ज्यों उसकी कला तथा स्वयं उसका विकास होता है, ज्यों ज्यों उसकी क़लम मँजती है, भाव गहरे, विचार सार-गर्भित होते जाते हैं, त्यों त्यों भाषा पर से मैल हटती जाती है, वह विशुद्ध तथा परिमार्जित होती जाती है; उसमें सरलता, तथा गम्भीरता, मधुरता तथा प्रवाह, जीवन तथा शक्ति आती जाती है, पंक्तियाँ भाव तथा अनुभव की गहराई से स्पन्दित हो उठती हैं; और शब्दों में अर्थ आँखों से खुल उठते हैं तथा उनसे आँखें मिलाते ही हृदय समझ जाता है कि उनमें क्या क्या भरा हुआ है।

"घन घमंड नभ गरजत घोरा,
प्रिया-हीन डरपत मन मोरा।"

पढ़कर पंडित अथवा अपंडित सभी एक साथ झूम उठते हैं। जो असली जादू है वह सब पर असर करता है—बाद को और विचार कर पंडित गण कलात्मक विवेचन कर कर के चाहे और मुग्ध होते रहें, किन्तु असली जादू जो पंक्तियों का है वह

तो बिजली सा असर कर ही जाता है। जैसे कच्चे कवियों की बादल और धुएँ से भरी हुयी कवितायें तथा अलंकार-ग्रसित पंक्तियाँ समझना कठिन होता है वैसे ही महान कवियों की महान पंक्तियों की अलौकिक सरलता, झलकती हुयी, बोलती हुयी-सी गम्भीरता को न समझना, उन पर बस मुग्ध ही न हो जाना कठिन होता है। इस सम्बन्ध में, गोस्वामी तुलसीदास का स्मरण मात्र काफ़ी है। मीरा बाई का जादू जिस बात पर निर्भर है उस भावों की गहराई, और उसे व्यक्त करने की हृदय की सीधी, सरल, सच्ची भाषा के प्रति संकेत कर देना भर काफ़ी है। रसखान की "मानुस हौं तो..." तथा "या लकुटी अरु कामरिया"—इन दो विख्यात, बे जोड़ तथा अमर सवैयों की महत्ता किन गुणों पर निर्भर है यह कौन नहीं जानता और इन पंक्तियों को कौन नहीं समझ सकता? नए पुराने सभी कवियों की उत्तमतम पंक्तियाँ इस बात की अमर साक्षी हैं कि जब हम अपने हृदय के सच्चे, गहरे भावों को तथा अपने सुलझे हुये महान विचारों को सच्चे हृदय से व्यक्त करते हैं तो हमारी भाषा अवश्य ही सीधी, सरल, तथा सच्ची होती है; अवश्य ही चुभ कर असर करने वाली होती है। किन्तु जब भाव कमज़ोर होते हैं, विचार अनिश्चित तथा उलझे हुये होते हैं तब इन कमियों को पूरा करने के लिए, इनकी लाज रखने के लिए इन्हें अधिक आभूषण पहिनाने ही पड़ते हैं। यहाँ अर्थ यह नहीं है कि ऊँची कल्पना, उन्नत दार्शनिक विचार, तथा महान भाव, उच्च विद्वत्तापूर्ण, तथा अलंकृत भाषा में सुचारु रूप से व्यक्त ही नहीं हो सकते—होते हैं और हुए हैं, किन्तु यह मानना पड़ेगा कि ऐसी भाषा में और चाहे जो कुछ हो, पर चकाचौंध ही सब से अधिक होती है। वह बात नहीं होती जो सीधे जाकर अन्तस्तल को स्पर्श कर लेती

हैं और आत्मा को विकसित कर देती है। एक महाकाव्य पढ़ते समय हम वृहत् शब्दों की बहुलता, वाक्यों की रचना, तथा अलंकार के प्रकाण्ड दिग्दर्शन पर चकित से रहते हैं। हम सुनते हैं, और हम जानते हैं कि कोई पंडित बोल रहा है, किन्तु जब एकाएक हृदय चीख उठता है :—

> "यदि विरह विधाता ने सृजा विश्व में था,
> तब स्मृति रचने में कौन सी चातुरी थी।"

उस समय हम यह भूल जाते हैं कि कौन बोल रहा है—हृदय समझता है कि अब हृदय से कोई आवाज़ निकली और वह मुग्ध हो जाता है। ऐसे उच्च तथा प्रकाशमान स्थलों पर भाषा की कठिनता स्वयं कोमलता में परिवर्तित हो जाती है, और इनके विवादहीन सुन्दरता से कोई इन्कार नहीं कर सकता। ऐसी पंक्तियाँ इसलिए महान कही जाती हैं कि वे मनुष्यता के विशाल हृदय में बिना परिश्रम के जाकर घर बना लेती हैं। ये जितनी जल्दी असर करती, जितनी आसानी से याद हो जाती हैं, उतनी ही कठिनता से हृदय और मस्तिष्क से मिटती भी हैं।

किन्तु सरलता के अर्थ ग्रामीणता से नहीं। एक सरलता, यानी सुबोधता आती है जब भाषा बैठ सी जाती है। भावों की दैन्यता, विचारों के छिछलेपन, कल्पना की पंगुता तथा भाषा के अज्ञान से जनित सुबोधता, अर्थात अशिक्षित अपरिमार्जित ग्रामीणता, भी एक होती है। किन्तु इसे हम सरलता नहीं कह सकते। कविता को सरलता कवित्वमयी होती है और जीवित होती है। यह सरल होती है क्योंकि इसमें कवि-हृदय में निहित विश्व-हृदय की चुभती हुई अनुभूतियाँ, एकान्त प्रिय गहरे भाव, योंही, स्वयं ही, अलौकिक विवशता से बोल उठते हैं। ये चीज़ें

स्वयं अपने को हमसे कहला लेती हैं, क्योंकि ये आत्मा की वास्तविक कविता होती हैं, और जो चीज़ें अपने को यों कहला लेती हैं वही उच्चतम कोटि की कविता होती हैं, और जिस भाषा में वे व्यक्त होती हैं वह तो "उमड़ कर आँखों से चुपचाप" प्रवाहित हो उठती हैं। जटिलता तो उन्हीं वस्तुओं में आती है जो हम तैयार होकर, ज्ञान-चैतन्य होकर, कहने की कोशिश करते हैं।

"आजा, आजा मेरे राजा,

ज़रा बजा जा अपना बाजा।"

ये पंक्तियाँ एक हिन्दी की पत्रिका में छप चुकी हैं। ये भी सरल हैं, किन्तु इनकी सरलता, ग्रामीण सरलता है। इनमें खोखलापन है इसलिये इनमें न समझने की कोई चीज़ ही नहीं है। बल्कि इनकी सारहीनता में भी एक प्रकार की जटिलता है। हम पढ़ते हैं और कहते हैं यह है क्या? इसके अर्थ क्या हैं?

किन्तुः—

मन मोहन की सजनी, हँसि बतरान।
हिय कठोर कीजत पै, खटकत आन ॥ १ ॥

* * *

अहो, सुधाधर प्यारे, नेह निचोर।
देखन ही को तरसें, नैन चकोर ॥ २ ॥

* * *

टूट खाट, घर टपकत, टटियौ टूटि।
पिय के बाँह उससिवा, सुख कै लूटि ॥ ३ ॥

* * *

इन पंक्तियों की प्राणमय सरलता में कितनी चुभन, कितनी मिठास, कितनी गहराई है, यह हृदय ही जानता है। इनमें मानव हृदय बोल उठा है क्योंकि मौन रहना मौत हो जाता और इसीलिए जिन शब्दों को उसने चूमा वही जीवित होकर खिल उठे हैं। सरलता से मेरा अर्थ ऐसी ही शिक्षित, परिमार्जित, जीवित, तथा कवित्वमय सरलता से है, जिसे पंडित, अपंडित, सभी पढ़कर दिल थाम लेते हैं और झूम उठते हैं।

मेरी सम्मति में काव्य की आत्मा भाव, भाषा शरीर और कल्पना आभूषण हैं। मुझे निजूरूप से आभूषण हीन सौन्दर्य विशेष रूप से भला मालूम होता है। मैंने 'त्रिवेणी' में ही लिखा था कि

"सुन्दर वही जो श्वेतवस्त्रा हो तदपि सुन्दर लगे।
कविता वही जो तीर सी जाकर हृदय अन्दर लगे॥"

आज मेरा यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया है। अन्त में भाषा के संबंध में महाकवि वर्ड्सवर्थ का यह कथन देकर मैं इस प्रकरण को समाप्त करता हूँ—

"The poet thinks and feels in the spirit of human passions. How, then, can his language differ in any material degree from that of all men who feel vividly and see clearly. It might be *proved* that it is impossible. But supposing that this were not the case, the Poet might then be allowed to use a peculiar language when expressing his feelings for his own gratification, or that of men like himself. But poets do not write for poets alone, but for men. Unless, therefore, we are advocates

for that admiration which subsists upon ignorance, and that pleasure which arises from hearing what we do not understand, the poet must descend from this supposed height; and in order to excite rational sympathy he must express himself as other men express themselves."

लोगों को मुझसे एक शिकायत और भी है। कुछ लगो समझते हैं कि उर्दू-हिन्दी-सम्मिलन का प्रयत्न करने में मैं हिन्दी का अहित कर रहा हूँ। मेरे अत्यन्त आदरास्पद मित्र डा० रामप्रसादजी त्रिपाठी ने तो 'प्याला' की समालोचना करते हुए यहाँ तक कहा है कि—

"The influence of Urdu poetry on Padma's thought is evident. Of late, it appears, he is being hypnotised more and more by it. If he decides finally to follow the traditions of Urdu poetry we are afraid he will injure his literary career and may even degenerate into an 'imitator'. He will do well if he sticks to short Hindi poems and lyrics. It is exceedingly doubtful, at least, it seems improbable, that the Hindi literary tradition and fashion will ever give a permanent place to मदिरा, प्याला, उपदेशक for वायज़ etc."

मुझे प्रसन्नता है कि डाक्टर साहब का भय ठीक नहीं और मैं हिन्दी संसार से अलग न होकर दिनों दिन उसके निकट आ रहा हूँ। दो ही चार वर्षों में हिन्दी संसार ने मदिरा, प्याला, शेख़जी, मधुशाला, शीरी फ़रहाद, लैला मजनू और यहाँ तक कि क़ब्र को जिस शीघ्रता से अपनाया है उसे देखते हुये

मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह दिन दूर नहीं जब कि हिन्दी में इन्हीं शब्दों और भावनाओं को लेकर ऐसे ऐसे सुन्दर काव्य ग्रन्थ प्रकाशित होंगे कि हिन्दी वालों को अपने साहित्य की श्री वृद्धि के लिये ख़ुशी या ना ख़ुशी से उन्हें स्थान देना ही पड़ेगा। रह गई मेरे नकलची होने की बात। इस संबन्ध में मुझे विश्वास है कि हिन्दी संसार की उदारता या अनुदारता ही मेरी रक्षा करेगी। इन शब्दों के प्रचारक के रूप में यदि उसने मेरा सम्मान नहीं किया है तो उसे नकलची कह कर मेरा अपमान करने का अधिकार कहाँ तक है यह वही जाने। और यदि इसका दोष मेरे ऊपर मढ़ा भी जाय तो मैं इसके लिये तैयार हूँ। आज नहीं तो दस दिन बाद ही सही, प्रत्येक राष्ट्र प्रेमी भारतीय को यह मानना पड़ेगा कि हिन्दी-उर्दू सम्मिलन द्वारा हिन्दू मुस्लिम ऐक्य की नींव मज़बूत करने की चेष्टा करने वाले राष्ट्र-भाषा-द्रोही या नकलची न थे। ऐसा विश्वास करने का कारण है। यह बड़ा शुभ लक्षण है कि जहाँ एक ओर आदरणीय डाक्टर त्रिपाठी जैसे विद्वान् मेरे इस प्रयत्न को शंका और भय की दृष्टि से देखते हैं वहीं हिन्दी के अनन्य प्रेमी, श्रद्धास्पद बाबू हीरालालजी खन्ना सरीखे विद्वान "तुम्हारी सरल कविताओं को पढ़ने से कम से कम मुझको तो बड़ा आनन्द मिलता है। राष्ट्रीय दृष्टि से मैं उनका स्वागत करता हूँ और विश्वास करता हूँ अपने ही समान नवयुवक लेखकों के लिये तुम्हारी शैली पथ-प्रदर्शक का काम देगी।" इत्यादि लिख कर मुझे उत्साहित भी कर रहे हैं। इस प्रवाह को देख कर प्रयाग की सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती' का माथा भी ठनका है। अपनी अगस्त सन् ३३ की संख्या में उसने ऐसे प्रयोगों का मज़ाक उड़ाते हुए लिखा है

कि हिन्दी के प्रतिभाशाली कवियों में 'हाला' और 'प्याला' का ही जोर नहीं बढ़ रहा है बल्कि वे 'क़ब्र' के लिये भी लालायित हैं। कहने और लिखने वालों की ज़ुबान और क़लम उनकी है और उन्हें कोई रोक नहीं सकता। किन्तु सत्य बात यह है कि एक भावुक कवि हृदय को 'क़ब्र' में प्रेम की जो भावना मिलती है वह 'चिता' में हर्गिज़ नहीं मिल सकती। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि मैं दाह-क्रिया का विरोधी हूँ या उसकी महत्ता से अज्ञान हूँ। मैं जानता हूँ कि आज योरप वाले भी दाह क्रिया के महत्त्व को मान चुके हैं। महाकवि शैली ने महाकवि कीट्स की लाश को दफ़नाने की अपेक्षा जलाना ही अधिक श्रेष्ठ समझा था। आज भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो अपने प्रेम पात्रों के मृत शरीर को जानवरों और कीटों द्वारा खाये जाने के विचार मात्र से काँप उठते हैं और अपने देश, जाति और कुटुम्ब की परम्परा के बिलकुल विपरीत उसका दाह-संस्कार कर अपने हाथों से पंच तत्व को पंच तत्व में मिला देते हैं। यों भी किसी स्मृति चिह्न द्वारा स्मरण किये जाने की अपेक्षा बिना किसी आधार के अपने प्रिय पात्र का स्मरण अधिक आध्यात्मिक और श्रेष्ठ है किन्तु जिस प्रकार 'अहंब्रह्मोऽस्मि' की महत्ता को स्वीकार करते हुए भी 'मूर्ति पूजा' में प्रेम का जो अपूर्व भाव सन्निहित है उससे इन्कार नहीं किया जा सकता ठीक उसी प्रकार चिता के साथ साथ 'क़ब्र' में प्रेम की जो भावना है वह भी मुक्त कंठ से स्वीकार करनी ही पड़ती है। फिर क्या दाह संस्कार के बाद 'क़ब्र' नहीं बनाई जा सकती? 'क़ब्र' और 'समाधि' में मेरी समझ में विशेष अन्तर नहीं है। कौन हृदय-वान व्यक्ति किसी प्रेमी को अपने प्रियतम की टूटी हुई क़ब्र को फूलों से सजा कर, उस पर प्रेम के दो आँसू गिराते हुये देखकर सच्चे
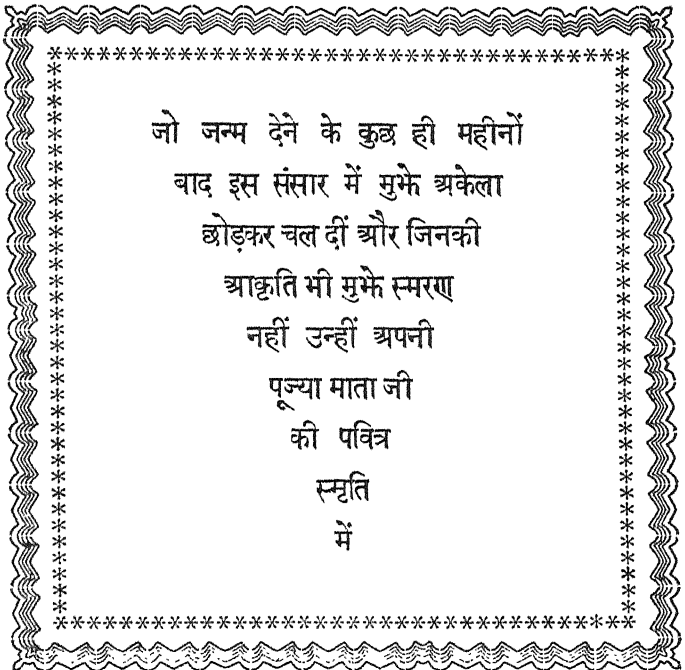
प्रेम की श्रेष्ठतम भावना से सिहिर न उठेगा? जैसा कि मैंने 'प्रेमपत्र' के चौथे पत्र में लिखा था, आज भी मेरी इच्छा तो यही है कि:—

"दयानाथ की दया अगर मुझ पर कुछ आये।
तो इच्छा है एक वही पूरी हो जाये॥
रम्य स्थल में रम्य वाटिका हो सुखकारी।
और बीच में स्थापित हो प्रिय मूर्ति तुम्हारी॥
जवाकुसुम का पुष्प तुम्हें अति प्रिय था प्यारी।
उनसे ही मैं सदा सजाऊँ मूर्ति तुम्हारी॥
जब तक जीवित रहूँ उसे मैं पूजूँ सुख से।
जब आ जाये समय और छूटूँ भव-दुख से॥
अश्रु दिखाई दे न किसी के नयन-कमल में।
मुझे सुलाया जाय तुम्हारे ठीक बगल में॥
लिखा हुआ हो यह हम दोनों की समाधि पर।
"रोये पथिक न कोई इस परिचय को पढ़कर॥
सोता है वह यहाँ दुखी हो जग-निर्दय से।
जिसको तौला जाय, बुद्धि से नहीं—हृदय से॥
यह है वह नर देवि सत्य जिसने पहचाना।
सिवा प्रेम के और नहीं कुछ जिसने जाना॥
शान्तिगान ही अगर पथिक गाये तो गाये।
जग का दुख-सुख गान भूल कर भी न सुनाये॥"

अन्त में हिन्दी के शुभचिन्तकों को यह विश्वास दिलाते हुए कि मुझे भी हिन्दी तथा हिन्दू धर्म से उतना ही प्रेम है जितना उन्हें, इस अप्रिय चर्चा को यहीं समाप्त करता हूँ। इस लेख में भाषा संबंधी अपने उचित विचारों को इतने सुन्दर रूप से व्यक्त करने के लिये मैं अपने प्रिय मित्र कुमार वीरेश्वर सिंह का आभारी हूँ।

जो जन्म देने के कुछ ही महीनों
बाद इस संसार में मुझे अकेला
छोड़कर चल दीं और जिनकी
आकृति भी मुझे स्मरण
नहीं उन्हीं अपनी
पूज्या माता जी
की पवित्र
स्मृति
में

विषय सूची

आ
त्म
वे
द
ना

आह्वान

[सोहनी]

जीर्ण शीर्ण मेरी वीणा को,
सजनि ! उठा तुम लाओ।
तार मिलाऊँ मैं तुम उस पर,
पुलकित हो कर गाओ ॥
गायन-मदिरा पी कर मैं तो,
हो जाऊँ मतवाला।
तुम देती जाना सखि ! मुझ को,
भर प्याले पर प्याला ॥

आ
त्म
वे
द
ना

रुक जाये जब हाथ, भूमि पर,
वीणा भी गिर जाये।
उर में सुख की पीड़ा अपना,
सुखकर नृत्य दिखाये॥

हलकी हलकी थपकी दे तब,
मुझे सुला सखि! देना।
अर्ध निमीलित इन आँखों की,
मदिरा तुम पी लेना॥

डाल गले में सजनि! बाँह तुम,
सोना मेरे उर पर।
प्राप्त करेंगे हम तुम सब कुछ,
जग में सो कर खो कर॥

आ
त्म
वे
द
ना

उन से

[बागेश्वरी]

आँखों में है देवि ! तुम्हारी,
कुछ ऐसा ही पानी।
तुम्हें बनाया है मैं ने,
हिय-मरु-प्रदेश की रानी ॥
मेरे इस सूखे प्रदेश को,
हरा भरा कर देना।
मरी हुई आशा-लतिका को,
पुनः जिला तुम लेना ॥

आ त्म वे द ना

मानस-वीणा को झंकृत कर,
ऐसी तान लगाना।
सब अपने हो जायँ यहाँ,
कोई न रहे बेगाना॥

भर भर कर तुम देती जाना,
निज प्रेमासव प्याला।
पी कर जिसको हो जाऊँ मैं,
अब ऐसा मतवाला॥

जिस को सिवा तुम्हारे दुनिया में,
कुछ भी न दिखाये।
अपने में पा तुम्हें ग्रन्थि जीवन की,
फिर खुल जाये॥

आत्म वेदना

निवेदन

[देश]

तुम तो भोली भाली हो ,
तुम में कठोरता कैसी ?
तुम रूप-राशि-ज्वाला हो ,
तुम में शीतलता कैसी ?

पहले तो अपनाया यों ,
मैं ही था सब कुछ जैसे ।
क्या भूल हुई जो मुझ को ,
विलगाया है अब ऐसे ?

मैं तो खुद ही था जग का ,
ठुकराया और सताया ।
दुखिया को और दुखा कर ,
बोलो तुम ने क्या पाया ?

आ
त्म
वे
द
ना

है हृदय मुकुर यह मेरा ,
ठुकराओ इसे न प्यारी ।
चित्रित है इस में ही तो ,
प्रेयसि ! प्रिय मूर्ति तुम्हारी ॥

कस स्नेह-रज्जु निज तक तुम ,
ढीला कर उसे न छोड़ो ।
यह बंधन है अति पावन ,
इस को तुम यों मत तोड़ो ॥

हो चुका तुम्हारा मैं तो ,
तुम भी मेरी हो जाओ ।
जीवन-पतझड़ में मेरे ,
बन कर बसन्त तुम आओ ॥

प्रेमासव पी कर हम तुम ,
पागल हो गायन गायें ।
ऊपर से सुर बालायें ,
हो मगन सुमन बरसायें ॥

आ

त्म

वे

द

ना

एक बार फिर

[बागेश्वरी]

एक बार फिर पा जाऊँ
तुम को तो कितना प्यार करूँ ?
तन मन धन जीवन अपना
सब कुछ तुम पर बलिहार करूँ ॥

तब तो तुम्हें न जाने दूँ
मैं भले पड़े जीवन देना ।
मुझ को अपने को दे कर ही
क्यों न पड़े तुम को लेना ॥

आ त्म वे द ना

वही जानता है हँसना
जो फूट फूट कर है रोया ।
उस ने ही पाया है सब कुछ
जिस ने अपने को खोया ॥

जीवन एक अबूझ पहेली
है विचित्र इस की माया ।
उलझा जो इस में वह ही
है इस को कुछ सुलझा पाया ॥

इस के उलझेपन में ही
तो दुनिया का सारा सुख है ।
इस को सुलझा कर जीने से
बढ़ कर कौन अधिक दुख है ?

मैं हूँ नम्र-भूमि प्रेयसि !
तुम करुणा-जल से सींच इसे ।
प्रेम-लता आरोपित कर दो
हो प्रसन्न जग देख जिसे ॥

आ
त्म
वे
द
ना

बचपन

[आसावरी]

वह मेरा भोला बचपन ?
था अपने में नहीं तनिक भी ,
जब अपना बेगानापन ॥

हँस कर सब ने जब सब खोया ।
आते ही जग में मैं रोया ॥
बे समझे ही समझा मैं ने ,
जीवन का कुल उथलापन ॥

आत्म वेदना

मार मार किलकारी हँसना ।
बात बात में रो रो पड़ना ॥
रोने में ही छिपे हुये थे ,
मेरे मन के सब गायन ॥

चंदा लेने की थी टेक ।
घाव नहीं थे उर में एक ॥
कितना सुखकर मादक था वह ,
मेरा छोटा सा जीवन ॥

वे सब सुख सपने अरमान ।
अब कर गये कहाँ प्रस्थान ॥
मुरझाया सा क्यों लगता है ,
मेरा कुसुमित मृदुल सुमन ॥

आत्म वेदना

उस नगर ओर

[बागेश्वरी]

चलना है ही उस नगर ओर ।
जिसका पाया अब तक न देवि ,
है कभी किसी ने ओर छोर ।।

मैले कपड़े कर साफ़ आज ।
सज लें सारा सामान साज ।
सोते रहना ही है न ठीक ,
हो जाये जाने कब न भोर ।।

आत्म वेदना

प्रियतम से मिलने में न लाज ।
जाऊँ मिलने फिर क्यों न आज ?

उठता है रह रह नाच नाच ,
मेरे मन का यह सुघर मोर ॥

सखियों से लें हँस बोल आज ।
होवे क्रोधित चाहे समाज ।

प्रियतम राज़ी है तो फ़िज़ूल ,
मचता दुनिया में रहे शोर ॥

मैं तो घूमूँगी सजे साज ।
मुझको कुछ भी है अब न लाज ।

सुन्दर दीखूँगी अधिक और ,
प्रियतम रँग में हो सराबोर ॥

आ
त्म
वे
द
ना

क्या शेष

[मालकोष]

सिवा चहकने के क्या शेष ?
पंच रँगे पिंजरे में मुझको,
बन्द किया स्वामी ने लाकर।
मुक्ति न निज वश में है जब, तब
मन बहलाना ही है गाकर।
बिना रुदन यदि हृदय न माने,
तो भी है हँसना अनिमेष॥
सिवा चहकने के क्या शेष ?

आ
त्म
वे
द
ना

बंधन में फँस जाना ही तो ,
पाना है अब मुक्ति यहाँ पर ।
जिये वही जो जी सकता हो ,
पानी में भी आग लगाकर ।

घूमे लिये हथेली पर सर ,
जिसे न हो भय का लवलेश ॥
सिवा चहकने के क्या शेप ?

चाहूँ और न चाहूँ चाहे ,
पर रहना है मुझे यहाँ पर ।
यहाँ विपमता ही समता है ,
खोना निज को सबको पाकर ।

सब अपने पर एक न अपना ,
अजब अजूबा है यह देश ॥
सिवा चहकने के क्या शेप ?

आ
त्म
वे
द
ना

मन से

[देश]

भुला कर वह भोली चितवन ,
पोंछ ले तू अब निज लोचन ॥

व्यर्थ शोक करना है उसका ,
जिसका आदि न अंत ।
क्या जाने होता कब इसका ,
पतझड़ और बसन्त ।
यही कहलाता है जीवन ॥

आ
त्म
वे
द
ना

है आनन्द यहाँ का तब तक ,
जब तक है अज्ञान ।
सुख ही सुख है जब तक दुख का ,
हो न किसी को ज्ञान ।
इसी से रह तू नित बस मगन ॥

कुछ भी नहीं जिसे कहते हैं ,
यहाँ पुण्य या पाप ।
दीवाने शासन करते हैं ,
अपने ऊपर आप ।
भूमि अपनी है, अपना गगन ॥

अपने को खोना है जग में ,
सब कुछ ही पा जाना ।
जान लिया दुनिया को जिसने ,
अपने को पहचाना ।
चलो जैसे चलता है पवन ॥

आ
त्म
वे
द
ना

कसक कहानी

[बागेश्वरी]

आज हृदय भर भर आता है आँखों में भी पानी ।
कानों में कह सा जाता है कोई कसक कहानी ॥
अपनी भूलों की कैसी यह मार्मिक करुण कथा है ।
रह रह कर उर में चुभने वाली अति दुखद व्यथा है ॥
पीकर मदिरा साक़ी को ही हाय ! क़त्ल कर डाला ।
पर न बुझी है प्यास अभी भी है हाथों में प्याला ॥
कैसी है यह तृष्णा अपनी ? कैसा पागलपन है ?
इसको ही कहते हैं जीवन, क्या यह ही जीवन है ?

आत्मवेदना

अपना जीवन तो है गिनना अब जीवन की घड़ियाँ ।
और पिरोना सुबह शाम है निज आँसू की लड़ियाँ ॥
रोते हैं वे आज ख़ूब कल हँसते थे जो मानी ।
फिर भी दुनिया—पागल दुनिया—है सुख की दीवानी ॥
मैं भी पागल था, पागल हूँ और रहूँगा पागल ।
ख़ूब समझ कर भी समझा है नहीं समस्या का हल ॥
जीवन-सागर में लहरों का नित उत्थान पतन है ।
चारों छोरों को छूकर बहता सुख दुःख पवन है ॥
अच्छे माँझी कभी तरंगों से न होड़ लेते हैं ।
अपने ऊपर से लहरों को बह जाने देते हैं ॥
किन्तु मस्त, बेसुध हो, मैं तो होड़ सभी से लूँगा ।
आज खोजने में साक़ी को अपने को खो दूँगा ॥

आ
त्म
वे
द
ना

तरंग में

[ग़ज़ल]

मुझको लेटे रहने दो, तुम विस्तर यहाँ लगाये।
सौदा कर के क्या होगा ? क्यों तन तकलीफ़ उठाये ॥
वह जाये सौदा करने, जो हो निज पर वश पाये।
क्या जाने मन-शिशु मेरा, कब किस पर ललचा जाये ?
कह दूँगा पूछेगा यदि, कोई मुझ से क्या लाये ?
ख़ाली हाथों भेजा था, हैं ख़ाली हाथों आये ॥

आ
त्म
वे
द
ना

क्यों पाप पुण्य चिन्ता का मेरा उर भार उठाये ?
मैं साथ चलूँगा उस के जो मुझे बुलाने आये ॥
है स्वर्ग बड़ों की ख़ातिर, यह दीन वहाँ क्यों जाये ?
मैं नहीं कहीं जाने का, बेपूछे बिना बुलाये ॥
जब तक बैठा हूँ बैठा, जिस दिन तरंग आ जाये ।
चल दूँगा सब कुछ तज कर, घूमूँगा भस्म रमाये ॥
पर एक बात है मुझ को, कोई क्यों आँख दिखाये ?
हूँ आप सताया जग का, कोई क्यों मुझे सताये ?
कह सुन कर कोई मुझ को, क्यों रोये और रुलाये ?
आना हो जिस को आये, जाना हो जिस को जाये ॥
वह अगर नहीं आता है, अच्छा वह यहाँ न आये ।
मैं ढूँढ़ निकालूँगा ही, वह वहाँ और छिप जाये ॥

आ
त्म
वे
द
ना

मुक्ति

[केदारा]

मैं हूँ जीव नहीं है फिर भी,
तन अपना अपने वश में।
हूँ मैं तीर किन्तु धन्वा है,
किसी दूसरे के कस में॥
एक मात्र इच्छा है अब यह,
बंधन से हो कर स्वाधीन।
विचरूँ मस्ती में, रह जाऊँ,
नहीं किसी के भी आधीन॥

आ
त्म
वे
द
ना

पराधीन रहने से अच्छा,
तो बिलकुल मिट जाना है।
भला वहाँ क्या रहना वश में,
जहाँ न जाना आना है?
अब न कभी भी आऊँगा मैं,
क़ैद यहाँ पर होने को।
मुक्ति हेतु घबरा घबरा कर,
तड़प तड़प कर रोने को॥
किन्तु अभी छूटूँ मैं कैसे,
यही समस्या सन्मुख है।
जीवन ही मेरे जीवन का,
सब से अधिक दुखद दुख है॥
सुख से सोना हो तो प्रियतम,
मुझे बुला लो अपने पास।
जिस में जगा सकें न तुम्हें फिर,
मेरे जलते विरहोच्छ्वास॥

आ
त्म
वे
द
ना

[भैरवी गज़ल]

पूछते हो हाल क्या तुम से कहूँ ?
आज विस्मृति सिन्धु में फिर से बहूँ ?
उन दिनों की याद आ जाती है जब ,
जी यही कहता है बस रोता रहूँ ।

चुप रहो छेड़ो न टूटे साज़ को ,
अब न पहचानोगे तुम आवाज़ को ॥

आ त्म वे द ना

मैं ख़ज़ाना हूँ मगर लूटा हुआ,
हूँ किसी का मैं हृदय टूटा हुआ।
भाग्य से ही भाग्य होता प्राप्त है,
भाग्य भी मुझ को मिला फूटा हुआ।
फूल हूँ वह जो कभी मुरझा गया,
गान हूँ वह जो नहीं गाया गया ॥

सुखद स्वप्नों का करुण अवसान हूँ,
दुख-*मुअज्ज़न का मधुर आह्वान हूँ।
जो न निकला है न निकलेगा कभी,
दीन उर का वह भरा अरमान हूँ।
मैं किसी भूले हुये की याद हूँ,
अनसुनी, पर पुरअसर फ़रियाद हूँ ॥

हो रहा कुल जगत मुझ पर क्रुद्ध है,
कंठ भी अब हो रहा अवरुद्ध है।
हाय ! रोना भी मुझे आता नहीं,
बेकसी मेरी न सीमाबद्ध है।
अब न मुख पर हास या उल्लास है,
मैं रुका हूँ चल रहा निःश्वास है ॥

---

*मस्जिद में नमाज़ पढ़ने के पहले आवाज़ (जिसे अज़ाँ देना कहते हैं) देनेवाला मौलवी

आत्म वेदना

आह ! वह गलियाँ इलाहाबाद की ,
और वह रँग रेलियाँ सैयाद की ।
मुदित हो सुनना सुनाना रात दिन ,
प्रेम शीरीं का वफ़ा फ़रहाद की ।
अब न अपना दिन न अपनी रात है ,
आँख में छायी हुई बरसात है ॥

दुख उदधि की कुछ न मेरे थाह है ,
रुक रही आ आ लबों पर आह है ।
मुक्ति पाऊँ अब यहाँ से शीघ्र ही,
बस यही बाकी बची निज चाह है ।
कौन पतझड़ और कौन बसन्त है ?
अब दिखाता अथ मुझे तो अन्त है ॥

मृत्यु और जीवन

[जोगिया]

जग उदधि बीच, सुख दुख तरंग
हम नर हैं लघु तृण के समान
प्रति क्षण बहते हैं निर्निमेष
जल-क्रीड़ा-विद्या से अजान

लहरों की खा खाकर थपेड़
बहते रहना प्रति दिवस याम
जीवन कहलाता, और मृत्यु
है खो जाने का एक नाम

द्विविधा

[ईमन]

चौराहे पर खड़े हुये हम,
सोच रहे हैं जाने क्या ?
मन मस्तिष्क बात दो कहते,
मानें और न मानें क्या ?
करता हूँ यदि प्यार उन्हें तो,
जग बैरी हो जाता है।
यदि करता हूँ नहीं तो हृदय,
रोता और रुलाता है॥
यश, वैभव, धन की इच्छा है,
क्योंकि जगत में रहना है।
जिस सरिता में सब बहते हैं,
हमें उसी में बहना है॥
विलग हुये तो जगत विलग हो,
पागल मुझे बतायेगा।
नित्य नई बातें पैदा कर,
जी भर मुझे सतायेगा॥

आ त्म वे द ना

जग की सी करता हूँ यदि तो,
हृदय रूठ अति जाता है ।
चैन न लेने देता मुझ को,
और न खुद ही पाता है ॥
कहता है रो रो कर मुझसे,
जग का झूठा नाता है ।
प्रेम पाश में बँध कर ही नर,
जीवन का सुख पाता है ॥
प्रेम वासना की राहों में,
किन्तु न है जीवन की पूर्ति ।
दुख, अपमान, फ़कीरी, सूली,
से ही बस मिलती है स्फूर्ति ॥
करूँ और क्या करूँ न मुझ को,
तनिक समझ में आता है ।
भ्रमित पथिक सा हूँ कोई भी,
मार्ग नहीं दिखलाता है ॥

दुनिया

[भीम पलासी]

अधर गुलाबी मदिरा है जग मैं हूँ पीनेवाला ।
पीना मेरा काम मुझे क्या है विष क्या है हाला ॥
शोभा की प्रतिमा है दुनिया, मैं हूँ चारु चितेरा ।
ऋतुपति रँजित जिस में सुन्दर संध्या और सवेरा ॥
अश्रु-कुहिर-आच्छादित जग, लगता है कितना प्यारा ?
बहता हूँ कल्पना-तरी ले, जब मिलता न किनारा ॥
अरुण प्रणय-शिशु रवि की मनहर, प्रथम सुनहली रेखा ।
चकित, भ्रमित, जग ने आँखें मलते ही जिसको देखा ॥
अधिक नहीं है फूलों के जीवन से जीवन अपना ।
देखा करते हैं हम जीवन दिन में जीवन सपना ॥
अपनी दीवारों पर लिख ले जग ये सुन्दर अक्षर ।
"औरों पर भी वही बीतती है जो अपने ऊपर" ॥
इन शब्दों में स्वर्ण किरण से रवि सुवर्ण भर जाये ।
रजत ज्योत्स्ना से शशि इन को चाँदी सा चमकाये ॥

उलहना

[बागेश्वरी]

दुर्भाग्य यही है मेरा, तुम ने न मुझे पहचाना ।
जीवन भर समझा तुम ने, मेरे रोने को गाना ॥
तुम दीप शिखा हो, मैं हूँ जलनेवाला परवाना ।
मैं मजनू , तुम लैला हो, मुझ को है प्राण गँवाना ॥
कहती हो जग के स्वर में, तुम भी मुझ को दीवाना ।
पर पागल यहाँ सभी हैं, दुनिया है पागल खाना ॥
बनते हैं पर सचमुच में, है जग में कौन सयाना ?
अपने को दे कितनों ने, सीखा है जीवन पाना ?
हृदयों की परख किसे है ? किस ने है इस को माना ?
जीने का अर्थ यहाँ है, फिर मिट्टी में मिल जाना ॥
स्मृति भी न शेष रह जाये, यों मुझको देवि ! मिटाना ।
अपने को खोकर जिस में, हो सरल तुम्हें पा जाना ॥

आ
त्म
वे
द
ना

कैसे ?

[विहाग]

कैसे मैं तुम को करूँ प्यार ?
अपने पर कुछ भी है न शेष मेरा अपना ही अख़्तियार ॥
रोम रोम में समा रही है प्रियतम की तस्वीर ।
जग हँसता है वह क्या जाने भला पराई पीर ?
हृदय तुम्हें दूँ आह ! कहाँ से, तुम्हीं बताओ देवि ?
लौट न सकते हैं धन्वा से, छूट गये जो तीर ॥
बस सकता है अब नहीं देवि,
मेरा अपना उजड़ा दयार ॥ टेक

आ त्म वे द ना

स्मृति-विद्युत मानस-नभ में है चमक रही गंभीर।
अश्रुधार वह चली कपोलों पर हो पूर्ण अधीर।
आशा और निराशा उर में हो कर अब बेहाल।
गुरुवी सम ही चिहुँक उठी हैं खा बूँदों के तीर।

क्रन्दन करता है हृदय-बाल,
रह रह कर मेरा, जिस प्रकार—
चिल्लाता भीषण स्वप्न देख,
सोया मनुष्य है बार बार॥ टेक

मेरा धर्म

(खम्माच)

सुख दुख की क्या बात ? हृदय ही
मेरा कोई लूट गया ।
रहा प्रश्न क्या विष अमृत का
प्याला ही जब टूट गया ॥
आशा का दीपक जलता था
झिल मिल कर उर में मेरे ।
एक निशानी थी उसको भी
मिटा दिया कर ने तेरे ॥
प्रेम कथायें सुना सुना कर
मुझे रुलाओ अधिक न और ।
वे दिन नहीं, न वह मैख़ाना
और न चलता है वह दौर ॥

पीना छूटे, पंडित जी ने
इससे तोड़ दिया प्याला।
पर छुट सकता है क्या इससे
पीना मेरा प्रिय-हाला ॥

ख़ूब घिरा हूँ उसमें ही जो
स्वयं बनाया था घेरा।
पीना छोड़ दिया दुनिया ने
पर न छुटा पीना मेरा ॥

उर-उपवन में तरु मनोर्थ के
बढ़ने को छाँटे जाते।
अगर न मर सकते नर जग में
तो न कभी वह जी पाते ॥

पंडित और मौलवी निर्मित
धर्म चाहिये मुझे नहीं।
पीना मेरा धर्म और है
मेरा साक़ी सभी कहीं ॥

मैं पीने वाला, मैं साक़ी
मेरी है यह मधुशाला।
पंडित जी कुछ बोल न सकते
ख़ूब पियूँगा मैं हाला ॥

आ
त्म
वे
द
ना

सती कली

[तिलक कामोद]

रवि ने पाकर प्रिय को समीप
निज स्वर्ण-रश्मि-बाहें पसार
चुम्बन कर आलिंगन समेत
अस्फुट कलिका को किया प्यार

पुलकति तन-पंखुरियाँ अजान
फैलीं प्रियतम के बाहु बीच
रवि ने खोले अधखुले नेत्र
आनन्द अश्रु से सींच सींच

आत्मवेदना

आई वियोग की काल रात्रि
बीता सुख का संयोग काल
फिर तो निज लोचन मूँद, मौन
रोई घबरा वह नवल बाल

शशि को देखा जब निज समीप
ललना थहराई हो सभीत
चलदी तन-पंखुरियाँ बिखेर
प्रियतम-स्मृति को कर अति पुनीत

मोती

[भैरव]

मोती को पाकर भी मैं ने उस का मूल्य न जाना ।
हुआ बराबर मुझ को उस का पाना और न पाना ॥
उसे छिपा कर रखता था मैं निज कर में जब सोता ।
ऊपर फेंक झेल कर उस को था अति पुलकित होता ॥
झेल सका मैं नहीं एक दिन मोती गिर कर भू पर ।
चूर चूर हो गया, आह ! तब रोया मैं चिल्ला कर ॥
इन्हीं नीच हाथों ने फेंका था मोती को ऊपर ।
अरे जौहरी क्या विलम्ब है ? काट इन्हें, जल्दी कर ॥

आ
त्म
वे
द
ना

अपने पन में आज जौहरी पर सब भूल गया है।
एक दूसरा मोती ला देने पर तुला हुआ है॥
यह पागलपन है या है यह उस ममत्व की सीमा।
जिस से लग कर बहता है सागर विनाश का धीमा॥
मोती गया जौहरी को अब नहीं दुखाऊँगा मैं।
दुखा हुआ हूँ पर उस के सुख में सुख पाऊँगा मैं॥
सुख के पीछे दुख है पर दुख के पीछे दुख ही है।
दुख है सत्य इसी से लगता वह मुझ को सुख ही है॥
जब ओढ़े सुन्दरता-चादर दुख-सन्ध्या है आती।
सुख के सुखद दिवस को सुन्दर तर है और बनाती॥

आ
त्म
वे
द
ना

सुकवि

[दुर्गा]

मैं कवि दुनिया मेरा गायन,
सुन्दर मनहर प्यारा ।
मादक चुभनेवाला भैरव,
तीन लोक से न्यारा ॥
मानवता-कल्पना जनित शिशु,
गंगा की शुभ धारा ।
मेरी है कल्पना सखी मैं,
उस का सखा दुलारा ॥

आ त्म वे द ना

मानवता का कमल कल्पना-सर,
में ही है खिलता ।
और कल्पना-सर है कवि के,
उर-प्रदेश में मिलता ॥
मैं हूँ कवि कल्पना-जगत का,
जन्म जात अधिकारी ।
मानवता मेरे जीवन से,
ही है सब को प्यारी ॥

मिलन

(भैरवी)

रुकीं न प्रिय! तुम क्यों इस बार ?
तुम तो थीं अति अधिक उदार ॥
इतना रोका, रुकीं न पल भर,
मानीं एक न मेरी बात।
भिगो दिया रो रो कर मैंने,
अपना और तुम्हारा गात।
रुक जातीं क्षण दो ही चार,
तुम तो थीं अति अधिक उदार ॥
देख भाव ही प्रिये! तुम्हारा,
रहा न मुझको कुछ भी ज्ञान।
कर न सका कुछ हाय! प्रेम का,
प्रेयसि! मैं आदान प्रदान।
बिगड़ गया मेरा श्रृंगार,
रुकीं न प्रिय! तुम क्यों इस बार ?
मुझे साथ यदि तुम ले लेतीं,
तो होता क्यों आज निराश।

आत्मवेदना

झुंझला झुंझला मुझे रुलाती ,
तब न अतृप्त प्रेम की प्यास ।
अब इस पार न हूँ उस पार ,
रुकीं न प्रिय ! तुम क्यों इस बार ?
उसे जानता हूँ प्रिय ! जिसने ,
तुमको रुकने नहीं दिया ।
उसी दुष्ट ने हाय ! मुझे भी ,
रुक जाने को विवश किया ।
पर कब तक ? मेरी हिय हार ,
तुम तो थीं अति अधिक उदार ॥
मिल जायेंगे हम दोनों ही ,
एक दिवस बस उसी प्रकार ।
पृथ्वी और गगन द्वारा ज्यों ,
मिलते सीमित और अपार ।
रह जायेगा काल निहार ,
तुम तो थीं अति अधिक उदार ॥

आ
त्म
वे
द
ना

मन से

[सहाना]

ऐ मेरे मन ललित किशोर ।

भिन्न भिन्न पक्षी जग-तरु पर
एक दूसरे से सुन्दर तर
किन्तु मुग्ध अपने अपने पर
रहते हैं औरों से बच कर

आ
त्म
वे
द
ना

मैं

[भैरव]

मृत्यु-लहर उद्वेलित-जीवन-सागर में नित आ कर ।
शान्त बना देती है उस का मनस्ताप कुल हर कर ॥
पागल था कुछ दिन माँगा करता था हाथ उठाये ।
मेरे ऊपर से भी हो कर लहर कभी बह जाये ॥
किन्तु न आयी लहर पास भी मुझ को दुखी समझ कर ।
तब सोचा अम्बर पर उड़ने की फैला कर दुख-पर ॥

आ
त्म
वे
द
ना

बैठूँगा यदि किसी जगह पर उड़ते उड़ते थक कर ।
कुहकूँगा मैं करुण राग में गायन निज स्वर भर कर ॥
रो रो देंगे शीश धुनेंगे सुनने वाले सुन कर ।
मरने का पढ़ पाठ बनेंगे अमर जगत के सब नर ॥
रह जायेगा ज्ञान धरा ज्ञानी का उस के मन में ।
अज्ञानी रुक जायेगा जा कर बस सूनेपन में ॥
मैं उड़ते उड़ते बैठूँगा जा कर उस तरुवर पर ।
जिस के नीचे सोता होगा प्रियतम मेरा मनहर ॥
उसे जगाऊँगा मीठी निंदिया से कुहुक कुहुक कर ।
उसे छिपा लूँगा अपने में फैला निज पारद-पर ॥
करुणामय हो जाऊँगा मैं करुण गान गा गा कर ।
अपनायेंगे करुणाकर मुझ को निज वस्तु समझ कर ॥

हाल

[देश, ग़ज़ल]

है अजीब हाल कि आज तक,
न मैं हँस सका न तो रो सका।
न ख़ुदी से हो ही सका अलग,
न ख़ुदी में ख़ुद को ही खो सका॥
मेरा हाल सुन के करोगे क्या ?
है वही तो आज भी कल जो था।
दिले दर्द अच्छा हुआ नहीं,
न बढ़ा ही कम भी न हो सका॥
कोई मुझ से यह भी बताये तो,
मैं करूँ तो क्या न करूँ तो क्या ?
न तो आँखें खोल सका कभी,
न कभी मैं चैन से सो सका॥
मेरी ज़िन्दगी भी है ज़िन्दगी ?
मेरा हाल कोई हाल है ?
कि थमे न अश्क कभी मेरे,
न कभी भी खुल के मैं रो सका॥

पं० पद्मकान्त जी की अन्य कृतियाँ

प्रेम पत्र

[लेखक—पं० पद्मकान्त जी मालवीय]

कविवर पण्डित पद्मकान्त जी मालवीय की जादू भरी लेखनी का यह पुस्तक अपूर्व चमत्कार है। अपनी प्रेम-शीला धर्म पत्नी सौ० शारदा मालवीय के स्वर्गारोहण पर उन्होंने उनकी स्मृति में इसे लिखा है। एक एक पंक्ति में वियोग, वेदना और असीम प्रेम के भाव कूट कूट कर भरे हुये हैं। कोई भी सहृदय व्यक्ति इसे पढ़ते समय एक बार भावों के अथाह समुद्र की गहराई तक जाये बिना नहीं रह सकता। हमारा दावा है कि प्रेम पत्र संसार के किन्हीं भी सर्वोत्तम प्रेम पत्रों के मुकाबिले में रक्खे जा सकते हैं। हिन्दी साहित्य में यह अपने ढंग की अनूठी पुस्तक है। सुन्दर एंटीक कागज पर छपी हुई इस पुस्तक का मूल्य एक रुपया मात्र।

कुछ सम्मतियाँ

सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती' तथा 'बाल सखा' सम्पादक

ठाकुर श्रीनाथ सिंह जी

"यदि मेघदूत" के पश्चात किसी प्रेम-काव्य ने मेरे हृदय पर प्रभाव डाला है तो वह कविवर पद्मकान्त मालवीय कृत 'प्रेमपत्र' है।"

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व साहित्य-मन्त्री पं० राम-नारायण जी चतुर्वेदी

आद्योपान्त पढ़ा पत्रों के विरह-व्यथा के सारे गान।
अश्रुधार भी किया प्रवाहित क्योंकि हुआ अपना भी ध्यान॥
भाषा, भाव, प्रेम की महिमा, प्रीति परस्पर पुण्य ललाम।
है सुन्दर प्रकार से चित्रित अमर किया भामा का नाम॥

प्रसिद्ध हिन्दी कवि श्री० प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'

'ईंट पत्थरों से बने हुये ताजमहल' की तुलना इन पत्रों से नहीं की जानी चाहिये थी। 'ताजमहल को देखकर मुझे ऐसा लगता है मानों इसमें शाहजहाँ का हृदय नहीं है, उसके वैभव का प्रदर्शन है। पद्मकान्त जी ने प्रेम-पत्र में अपने हृदय का अर्घ्य चढ़ाया है। ये पत्र चिरकाल तक जीवित रह कर इस दम्पति की सरल-मधुर प्रेम-कथा को उज्वल बनाये रहेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

'भारत', प्रयाग

"इन प्रेम-पत्रों में उनकी प्रत्येक लाइन में—विषाद और करुणा का सागर लहरें मारता है। प्रत्येक पाठक इन लहरों से सराबोर हुये बिना न रहेगा।"

'प्रेमा', जबलपूर

"जिस प्रकार मुगल सम्राट शाहजहाँ ने अपनी बेगम मुमताज की स्मृति में 'ताज-महल' निर्माण कर उसे अमर किया है उसी प्रकार पं० पद्मकान्त जी ने 'प्रेम-पत्र' लिखकर अपनी स्वर्गीया पत्नी को अमर करने का सफल प्रयत्न किया है। कवि ने सीधी सादी भाषा में अपना हृदय निकाल कर रख दिया है।"

'लीडर', प्रयाग

"—देशी भाषाओं में प्रायः शोकान्त साहित्य एक ही ढंग का, सुस्त और दिखावटी होता है। उसमें सचाई तथा हृदय की अभिव्यञ्जना नहीं होती। 'प्रेम पत्र' इस कसौटी पर खरा उतरता है। वास्तव में हिन्दी साहित्य में 'प्रेम पत्र' एक अनूठी पुस्तक है।"

प्याला

[लेखक—कविवर पं० पद्मकान्त जी मालवीय]

'प्याला' भी कविवर पं० पद्मकान्त जी मालवीय की 'त्रिवेणी' के वाद की कविताओं का संग्रह है। पं० पद्मकान्त जी की कविता का जिन्होंने एक बार भी पाठ किया है वे उनकी काव्य कला के क़ायल हो गये हैं। इस पुस्तक की सराहना विश्ववन्द्य महाकवि रवीन्द्र ने भी की है। इसका प्रथम संस्करण हाथों हाथ बिक गया था। अब उसका दूसरा संस्करण निकला है। इसका मूल्य भी एक रुपया ही है।

कुछ सम्मतियाँ

'भारत', प्रयाग

"कवितायें सुन्दर, भावपूर्ण एवं हृदय पर असर करने वाली हैं। कुछ कवितायें तो इतनी सुन्दर हैं कि पाठक उन्हें पढ़ते समय मस्त होकर झूमने लगेंगे। इस प्याले में काव्य का जो आसव भरा हुआ है वह कविता-प्रेमियों को उन्मत्त कर देने के लिये काफ़ी है।"

'लीडर', प्रयाग

'प्याला' की कवितायें भाव और दृष्टिकोण में मुख्यतया नवीनता लिये हुये हैं। किन्तु वे वर्तमान हिन्दी कविता के कुछ विज्ञ दोषों से दूर हैं। कम से कम इसमें विलक्षण अतुकान्त कविता लिखने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया है। इसके विपरीत इसकी अधिकांश कवितायें भारतीय संगीत की मनोहर राग रागिनियों में बँधी हुई हैं जिससे ये भली प्रकार से गाई जा सकती हैं जो कि कविता को प्रभाव पूर्ण बनाने का एक बड़ा साधन है। वास्तव में सूर, तुलसी, मीरा इत्यादि प्राचीन महाकवियों की कविता का बहुत कुछ सौन्दर्य उनका संगीत पूर्ण होना भी है। अपने समकालीन हिन्दी कवियों के समान पद्मकान्त जी गंभीरता लाने के प्रयत्न में समझ के परे की वस्तु नहीं बन गये हैं। हम लेखक को उनकी सफलता पर बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि हिन्दी जनता उनके इस प्याले को उत्सुकता के साथ छीन लेगी।

'कर्मवीर', खंडवा

—इसमें तो सन्देह नहीं कि पद्मकान्त जी की कविताओं में एक निश्छल, सरल, भोले और प्रेमी हृदय के दर्शन होते हैं। उसमें शब्दाडम्बर नहीं, क्लिष्ट कल्पनाओं की अस्पष्टता नहीं। दर्शन की गूढ़ पहेलियों को सुलझाने के प्रयास में कवितायें समझ के परे की वस्तु नहीं बना दी गई हैं।···उनकी कविता में तड़प है, मद है, सरलता है और है प्रेम जन्य अनुभव।

हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी

"छोटे छोटे गान लिखने में पद्मकान्त जी से बहुत आशा है। वे अभी नवयुवक हैं और अपनी अवस्था को देखते हुये

बहुत अधिक ख्याति पा चुके हैं। उनके कितने ही गान जैसे 'किसी से भूल' इत्यादि बहुत ही ऊँचे दर्जे के हैं और उनकी कवित्व शक्ति पर गहरा प्रकाश डालते हैं।"

त्रिवेणी

[लेखक—कविवर पं० पद्मकान्त जी मालवीय]

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पं० पद्मकान्त जी मालवीय की प्रथम रचनाओं का यह प्रथम संग्रह है। हिन्दी संसार ने इसकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। पुस्तक बहुत ही सुन्दर चिकने कागज पर आठ दस रंगीन चित्रों से सुशोभित है, फिर भी मूल्य केवल एक रुपया ही है। लोगों की सम्मतियाँ पढ़िये और तब इस पुस्तक को ख़रीद कर अपने पुस्तकालय की शोभा बढ़ाइये।

'महारथी', दिल्ली

पद्मकान्त जी की प्रत्येक रचना में रस है, माधुर्य है, भाव प्रवणता है। उसमें एक विचित्र कवित्व चमत्कार है। प्रत्येक रचना में अनुरागी मानस की ऐसी करुण और मर्म स्पर्शित भावनाएं परिस्फुटित हो उठी हैं जिनसे नीरस हृदय में भी झंकार उत्पन्न हो उठती है। पद्म जी अपने इस अल्पवय में ही जिस कवित्व प्रतिभा का प्रकाश कर सके हैं उससे उनकी विशालता का पता चलता है। समय आने पर वे अक्षुण्ण गरिमा लाभ करेंगे। उनकी कवितायें आधुनिक वितंडावाद से बहुत दूर हैं, उनमें तो सत्य और सुन्दर रूप में, विभिन्न प्रकार की रचनाओं में मानस के स्पष्ट भाव बरबस निकल पड़े हैं। पुस्तक में अङ्कित वस्तु में जो आकर्षण है, उसके वाह्य रूप में भी वही लुभावनापन है।